Issue-06/Vol.21/Dec. 2018

ISSN No. 2319 - 5908

An International Multidisciplinary Refereed Research Quarterly Journal

शोध संदर्श

शोध संदर्श

SHODH SANDARSH

शिक्षा, साहित्य, इतिहास, कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य आदि

2018-19

Chief Editor :

Dr. V.K. Pandey

Editor :

Dr. V.K. Mishra

Dr. V.P. Tiwari

UGC Approved Journal No.-41329

SJIF No. 4.713

GIF No. 1.4296

विविध ज्ञान - विज्ञान - विषय का मन्थन एवं विमर्श ।
नव - उन्मेषी दशा - दिशा से भरा 'शोध - सन्दर्श' ।।

Dr. R. C. Patel

Issue-06/Vol-21/Dec. 2018
ISSN No. 2319 - 5908
An International Multidisciplinary Refereed Research Quarterly Journal
उच्च शिक्षा से सम्बन्धित विमर्श तथा शोध का बहु-भाषीय त्रैमासिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल

SHODH SANDARSH

Education, Literatura, History, Art, Culture, Science, Commerce etc.

Patron
Prof. R.P. Tripathi
Ex. Head.
Deptt. of AIHC & Archaeology
Allahabad Central University, Allahabad

Chief Editor
Dr. Vimlesh Kumar Pandey
Associate Professor
P.G. Deptt. of AIHC & Archaeology
S.B.P.G. College, Badlapur, Jaunpur

• Editor •

Dr. Vijay Pratap Tiwari
Dr. Vijay Kumar Mishra

Prof. Sushaim Bedi
Deptt. of Hindi
Colambia University USA

• Editorial Board •

Prof. (Dr.) Saroj Goswami
Head Deptt. of Hindi
Govt. Girls P.G. College
Rewa (M.P.)

Dr. Girja Prasad Mishra
Principal
Sambhu Nath College of Education
Jhalwa, Allahabad

Dr. Rakesh Dwivedi
Asstt. Prof.
Deptt. of Hindi
DAV P.G. College, Varanasi (U.P.)

Dr. Sanjay Kumar Singh
Economic & Statistical Officer
(U.P.)

Dr. Vijai Kumar Srivastava
Associate Prof.
Deptt. of Physics
DDU Gorakhpur University
Gorakhpur

Anil Kumar Swadeshi
Associate Prof.
Deptt. of English
PGDAV College, Delhi University
Delhi

Ananda Srivastava
Programmer (Group 'A')
Jamia Millia Islamia
(Central University)
New Delhi

Manohar Pathak
Work as research Intern at CSIR-
NISCAIR for Indian Journal
of Natural Porducts and
Resources

Dr. Jamil Ahmed
Deptt. of AIHC & Arch.
Allahabad University Allahabad

Dr. Ashish Kumar Mishra
Associate Prof. Dept. of Hindi
Nehru Gram Bharati Deemed University, Alld.

• Legal Advisor •
Dhirendra Kumar Mishra

CONTENT

Sanskrit Literature

- स्वातन्त्र्यसंभवमहाकाव्ये लोकसन्देशस्य भावना-*दयाशंकर तिवारी* 1-3
- श्री चैतन्य दर्शन का साहित्यिक अनुशीलन-*श्रीमती (डॉ०) नीतू सिंह एवं श्री भोजराज सिंह* 4-7
- पुरुष रूपी परमात्मा के सकारात्मक चिन्तन में सामाजिक एकता की भावना-*डॉ० सिकन्दर लाल* 8-12
- वेदोक्त सकारात्मक विचारों का प्रभाव एवं प्रासंगिकता-*डॉ० अभिमन्यु सिंह* 13-15
- सन्त रविदास की दृष्टिकोण में माँ गंगा जैसी महान् नदियों की रक्षा करना मानव धर्म-*डॉ० सिकन्दर लाल* 16-18
- संस्कृत वर्णमाला की वैज्ञानिकता-*डॉ० मंजु सिंह* 19-22
- उत्तररामचरितम् में मौजूद शम्बूक वृत्तान्त सामाजिक एकता में बाधक होने के कारण मिथ्या -*डॉ० सिकन्दर लाल* 23-32

Hindi Literature

- वीरेन्द्र जैन के उपन्यास 'डूब' में विकास की विसंगतियाँ-*अनुपमा गुप्ता* 33-36
- यथार्थबोध के परिप्रेक्ष्य में रवीन्द्रनाथ त्यागी का हास्य-व्यंग्य-*अनिल कुमार मौर्य* 37-39
- बालमुकुन्द गुप्त की कविताओं में जनजागरण की चेतना-*दीपक कुमार दास* 40-46
- पितृसत्ता और स्त्री-मुक्ति के प्रश्न (हिन्दी दलित आत्मकथाओं के विशेष संदर्भ में)-*धर्मेन्द्र कुमार वीरोदय* 47-49
- पं० माखनलाल चतुर्वेदी : राष्ट्रीयता और हिन्दी-*डॉ० आर०पी० वर्मा* 50-53
- धर्मवीर भारती के काव्य 'अन्धायुग' में आधुनिकता-*डॉ० वीरपाल सिंह* 54-57
- साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में माखनलाल चतुर्वेदी का योगदान-*डॉ० आर० पी. वर्मा* 58-60
- पारम्परिक पर्यटन के प्रति आकर्षण में साहित्य का अवदान-*डॉ० अखिलेश कुमार वर्मा* 61-64
- रीवा राज्य की मीरा-रानी कीर्ति सिंह-*डॉ० सरोज गोस्वामी* 65-68
- गुप्त जी का नारी आदर्श-*डॉ० आशा शर्मा* 69-70
- संजीव के उपन्यास 'अहेर' में चित्रित समाज-*डॉ० सुनील कुमार एवं प्रियंका* 71-77
- काव्य भाषा हिन्दी (भारतेन्दु से अरुण कमल तक)-*डॉ० सूर्या बोस* 78-80
- श्याम नारायण पाण्डेय की राष्ट्रीय चेतना-*डॉ० वर्षा खरे* 81-83
- नवोदित हिन्दी कवियों की रचनाओं में पर्यावरण-*डॉ० रंजीत एम०* 84-87
- राजेन्द्र यादव के उपन्यासों का संक्षिप्त विवेचन : एक दृष्टि-*सतीश कुमार* 88-90
- मार्कण्डेय के कथासाहित्य में हाशिये के लोग-*डॉ० सिंजू पी०वी०* 91-94
- डॉ० अम्बेडकर के सामाजिक न्याय में मजदूर अधिकारों का जातीय और वर्गीय संघर्ष-*मनीष पटेल* 95-98
- हिन्दी और मराठी आँचलिक उपन्यासों में चित्रित लोककला एवं लोक संस्कृति-*डॉ० रवीन्द्र पाटिल* 99-102
- शिवानी के साहित्य में चित्रित पहाड़ी अँचल की प्रमुख समस्याएँ-*डॉ० मनाली अमोल सूर्यवंशी* 103-106
- विवेकीराय के उपन्यासों में अभिव्यक्त स्त्री जीवन का यथार्थ -*प्रो० सच्चिदानन्द चतुर्वेदी एवं शिंगाडे सचिन सदाशिव* 107-110
- दादू का साहित्य सामाजिक सद्भावना का दर्पण-*भगवान सहाय शर्मा* 111-112
- सामाजिक विद्रूपताओं की शल्य-चिकित्सा करती मोहन सपरा की कविताएँ-*प्रो० सुधा जितेन्द्र एवं आत्माराम* 113-122
- हिन्दी कविताओं में किन्नर विमर्श-*डॉ० चित्रा मिलिन्द गोस्वामी* 123-125
- कृष्णभक्ति काव्य में आधुनिक बोध-*डॉ० दिलीप कुमार कसबे* 126-128
- 'वेरड' जनजाति की विदारक वास्तविक अभिव्यक्ति-*डॉ० दत्तात्रय रामचंद्र भोसले* 129-131
- कुसुम अंसल के कथा साहित्य का सामाजिक पक्ष-*डॉ० गुरमीत कौर* 132-137

(U.G.C. Approved Journal No. : 41329) ISSN No. - 2319-5908
Hindi : Shodh Sandarsh-VI, Vol.-XXI, Dec.-2018, Page : 99-102
General Impact Factor : 1.4293, Scientific Journal Impact Factor : 4.713

हिन्दी और मराठी आँचलिक उपन्यासों में चित्रित लोककला एवं लोक संस्कृति

*डॉ. रवीन्द्र पाटिल**

संस्कृति किसी राष्ट्र, राज्य, प्रदेश, जीवन अथवा समाज की सम्पूर्ण मानसिकता का आदर्श एवं पवित्र रूप होती है। इसके अंतर्गत जीवन के समस्त क्रियाकलापों का लेखा-जोखा सम्मिलित होता है। भारतीय संस्कृति के मूल स्त्रोत का गहरा प्रभाव विशिष्ट प्रदेशों के ग्राम एवं अंचलों में पाया जाता है। अंचल को निजता और पूर्णता प्रदान करने में आंचलिक संस्कृति का महत्वपूर्ण योगदान होता है। आंचलिकता के सफल निर्वाह के लिए संस्कृति चित्रण को एक अनिवार्य और महत्त्वपूर्ण तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है। प्राकृतिक परिवेश की विशेषता और नगरों महानगरों से दूर होने के कारण ग्राम एवं अंचल की संस्कृति अपनी अलग पहचान रखती है। अपनी परंपरा से चली आयी सांस्कृतिक विरासत को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संजोए रखने का प्रयास यहाँ चलते रहते हैं। परिणामतः देश के कोने-कोने में स्थित पिछड़े एवं अछूते अंचलों में भारतीय संस्कृति का मूल रूप आज भी शेष है। अतः देश के इन खंड-खंड संस्कृति के माध्यम से ही अंखड भारतीय संस्कृति का निर्माण हुआ है। ग्राम एवं अंचलों का जीवन पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर होने के कारण वह मूलतः कृषि या ग्राम संस्कृति है। इसके द्वारा इनकी संपूर्ण मानसिकता और जीवन प्रणाली का सहज, स्वच्छ, सरल, स्वाभाविक और सुंदर रूप सामने आता है। इसमें ग्रामों एवं अंचलों की गौरवमयी धारणा, परंपरा एवं इतिहास विद्यमान है। ग्रामों एवं अचलों में आम आदमी के समस्त क्रियाकलापों तथा लोकजीवन को वाणी प्रदान करने का काम लोकसंस्कृति करती है। लोकगीत, लोककला, लोककथा, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोकसंगीत, पर्व-त्यौहार, मेले, संस्कार रुढ़ियाँ, रीति-रिवाज आदि विभिन्न बातों के योग से संस्कृति बनती है। इसमें अचंलों की गौरवमयी धारणा, परंपरा एवं इतिहास रहता है। लोककला, लोकसंस्कृति का अभिन्न अंग एवं लोकसाहित्य का सशक्त माध्यम है। लोककलाएँ जन-जीवन की प्रचलित परंपराओं का संरक्षण और संवर्धन करती है। 'दंगल-कुश्ती' यह प्राचीन काल से आज तक चली आयी लोककला का एक सशक्त माध्यम हैं। इसके अलावा लोकनाट्य गवैया (गायकी), विविध वाद्य बजाने की कला, बढ़ई आदि सभी कलाओं का समावेश लोककला के अंतर्गत होती है। 'लोकसंस्कृति' संस्कृति की जीवंत रूप होती है। जो साक्षात जीवन को सौंदर्य और भाव से संबोधित करती है। इसके अंतर्गत लोकजीवन, वेशभूषा, लोककथा, लोकगाथा, लोकसंगीत, लोकनृत्य आदि का समावेश होता है। लोकसाहित्य लोकजीवन का स्पंदन होता है। लोकसंस्कृति उस प्रदेश की सांस्कृतिक पहचान होती है। अतः लोकसंस्कृति विशिष्ट भू-प्रदेश की 'ब्लू प्रिंट' होती है। अतः हिंदी और मराठी आंचलिक उपन्यासों में चित्रित लोककला एवं लोकसंस्कृति का विवेचन इस प्रकार है।

लोककला : यह लोकसंस्कृति का अभिन्न अंग एवं लोकसाहित्य का एक सशक्त माध्यम है। अंचलों में लोकसाहित्य तथा लोककलाओं के माध्यम से सामान्य जनजीवन का मनोरंजन होता है। अंचलों में लोकसाहित्य तथा लोककलाओं के माध्यम से सामान्य जनजीवन का मनोरंजन होता है। अंचलों में लोकसाहित्य ही मनोरंजन का सशक्त माध्यम होता है। लोककला के संदर्भ में डॉ. कालीचरण यादव लिखते हैं, लोककला की व्याख्या इस प्रकार दी जा सकती है कि "वह किसी भी देश की विशुद्ध परंपरा है जो पीढ़ी दर पीढ़ी एक ही परंपरा से जुड़ी चली जाती हैं। इसमें निहित मत, विचार, श्रद्धा आदि बिना किसी परिवर्तन के चलते आते हैं।" (सं. कालीचरण यादव, मड़ई, अंक - 11) आज भी लोकसंस्कृति और लोककला को जीवित रखने वाले कलाकार हिंदी और मराठी संस्कृति में सामान्य जन-जीवन की रोजी रोटी में हिस्सेदार के रूप में हैं। मराठी संस्कृति में तो लोगों की निष्ठा कलाकारों का अपने देवी देवताओं के प्रति विश्वास ही लोक परंपरा को आज भी जीवित रखता है। लोककला के संदर्भ

* *अध्यक्ष, हिंदी विभाग, राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)*

में मराठी के समीक्षक डॉ. शिवाजीराव चव्हाण का कथन दृष्टव्य है, "लोककला लोकांच्या परंपरांचे संवर्धन आणि संरक्षण करतात त्यातून समाज जीवनाचे आदिबंध सापडतात लोककलावर सौंदर्यशास्त्राचे संस्कार घडविले की नागर कला जन्माला येतात. लोककलाही अभिजात कला द्वारा काळशी नाते जोडतात. लोककला आणि कलांच्या या देवाण - घेवाणीमुळे लोकसंस्कृति आणि संस्कृतिमध्ये अशीच स्विकारशीलता निर्माण होते।" डॉ. र. र. वरखेडे - लोकसाहित्य व लोक परंपरा, पृ. 45 (मराठी लोकनाट्याचा परंपरा शिवाजीराव चव्हाण) लोककलाएँ जन - जीवन की प्रचलित परंपराओं का संरक्षण और संवर्धन करती हैं। लोककलाएँ सौंदर्यशास्त्र से प्रभावित होकर अपनी काल परिधि में बँधकर नागर कलाओं को जन्म देती हैं। कला और लोककला की आदान-प्रदान के प्रभाव स्वरूप संस्कृति और लोकसंस्कृति में नई संभावनाएँ देखी जा सकती हैं। उपयुक्त अध्ययन के बाद प्राप्त हिंदी और मराठी लोककलाओं का विस्तृत विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है।

दंगल - कुस्ती : यह भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से लेकर आजतक चलता हुआ लोककला का एक सशक्त माध्यम है। यह लोककला देश की राजधानी से लेकर कन्याकुमारी तक देखी जा सकती है। इससे हिंदी तथा मराठी आँचलिक उपन्यास अछूते नहीं हैं। तीज, त्योहारों, उत्सवों के समय इसका आयोजन बड़े धूमधाम से किया जाता है। रेणु जी ने 'मैला आँचल' में चम्पापुर मेले का और वहाँ की दंगल - कुश्ती का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया है, "चम्पापुर मेले का दंगल है बाबू! देखने वालों पर धक्कामुक्की शुरू हो जाती है। सिपाही जी लोग छड़ी नहीं चमकाते रहे तो हर साल - दो आदमी दबकर मरजाये।" (फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृ. 208) इसके अतिरिक्त -कमलाकांत त्रिपाठी का 'बेदखल' सिवप्रसाद सिंह के 'शैलूष' उपन्यास में इस लोककला का वर्णन हुआ हैं। मराठी के ख्यात लेखक र. वा. दिघे 'पड रे पाण्या' उपन्यास में कुश्ती कला का वर्णन करते हुए लिखते हैं, 'सकाळी दर्शनकारिता गर्दी होती दुपारी लोकं जिन्नस-पन्नस विकत घेण्याच्या नादात होते, दिवस कलला तसे लोकांचे कुश्ती चे आकर्षण जागे झाले... भरपूर करमणूक आखली होती म्हणून उत्सवप्रिय खेडूत खुषीत होते, नदीकाठचे वाभुळवन माणसांनी फुलले। (र. वा. दिघे, पडरे पाण्या, पृ. 132, 133) जहाँ देहात में होनेवाले मेलों का यथार्थ वर्णन हुआ है। मेलों का प्रमुख आकर्षण कुश्तियों के दंगल होते हैं। इसमें पहलवान लोग पूरी तैयारी के साथ उतरते हैं। इसके अलावा रणजीत देसाई जी के माँझा गाँव व्यंकटेश माडगुळकर के 'बनगरवाडी' आदि उपन्यासों में भी कुश्ती का चित्रण दिखाई देता है।

लोकनाट्य : हिंदी में लोककला भी कहते हैं- मराठी में यह कला तमाशा नाम से जानी जाती है। मणि मधुकर के 'पिंजरे में पन्ना', उपन्यास में यह लोककला प्रस्तुत है। इसके अलावा फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल में नौटंकी, सुरील, किरतन, अठियाली कीर्तन और नारदीसूर आदि लोककलाओं का वर्णन हुआ है। ठाकुर प्रतापसिंह के सात घरों का गाँव राकेश वत्स के 'जंगल के आसपास' में भी लोकनाट्य का चित्रण हुआ है।

महाराष्ट्र में फसल कटाई के बाद किसान कामों से मुक्त होकर मनोरंजन के लिए रात को तमाशा का आयोजन करते हैं। इस प्रसंग का चित्रण मराठी के ख्यात लेखक र. वा. दिघे अपने उपन्यास 'पानकळा' में इस प्रकार करते हैं, "शेतावरून दमून भागून आलेल्या शेतकयाला तमाशा म्हणजे परब्रह्म तेवढीच त्याच्या जीवाची करमणूक, तमाशा लागोपाठी किती ही रात्र चालो, तो आपला उजाडे पर्यंत ताटकळत बसलाय।" (र. वा. दिघे पाणकळा पृष्ठ 9,10)।

गवैया (गायकी) : लोककला में कलाओं को प्रदर्शित करने वाले कलाकारों के साथ-साथ गाय की (गायन) कला को जतन करनेवाले कई कलाकार होते हैं। हिंदी के ख्यात लेखक नागार्जुन 'बलचनामा' में गवैयों का जिक्र करते हुए लिखते हैं, "हमारे जिला जवार में नामी-नामी गवैंया हैं। उनका सूर हवा के पंखे पर जब थिरकने लगता है। तब सुननेवाला मगन होकर आँख मूँद लेता है। बाबू घराने की औरतें महीन गल से जब मलार और बटनवनी या समदाऊन का तान अलापती हैं तो गाय-बैल भी चरना छोड़कर इधर-उधर ताकते रह जाते हैं।" (नागार्जुन बलचनामा पृ. 98)

विविध वाद्य बजाने की कला : भारतीय संस्कृति और वाद्य का एक अनुठा संगम है। भारतीय देहातों की संस्कृति में वाद्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जिससे आँचलिक साहित्य अछूता नहीं रह सकता। विवेकी राय के सोनामाटी में लोग झिरिहिरी पर्व के समय उत्साह के साथ इकट्ठा होकर सभापति जैसे तबला-वादक को दाद देते हुए नजर आते हैं। इसके अलावा रेणू के 'परती-परिकथा' में रयू रामायणी की सारंगी बजाने की कला प्रस्तुत है।

मराठी के उपन्यासकार गो. नी. दांडेकर के 'जैत रे जैत' उपन्यास में ढोल बजाने की कला और उस वाद्य का विस्तृत विवेचन परिलक्षित है। इस उपन्यास का पात्र नाग्या ढोल बजाने की कला में माहिर है। इस प्रसंग का चित्रण करते हुए लिखते हैं, "नाग्याच्या थाप ढोलावार पडली त्याचा थरारा रातभर घुमू लागला, तशी वाडीनली ढाकरं तर भुत्याच्या अंगणाकडे धावलीच, पण शेजारच्या ठाकरवाड्यानांही पाय फुटले।" (गो. नी. दांडेकर जैत रे जैत पृ. 22) अतः नाग्या के ढोल की अवाज से महाराष्ट्र में कोंकण के वाडी-वस्तियों में बसने वाले ठाकर लोग मंदिरन की ओर दौड़ पड़ते थे।

चित्रकला : यह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। राजा रवि वर्मा जैसे चित्रकारों को आज भी याद किया जा सकता है। हिंदी और मराठी के कई आँचलिक उपन्यासों में इसका चित्रण दिखाई देता है। रेणु के 'परती परिकथा' नागार्जुन के 'वरुण के बेटे', मणि मधुकर के 'पिंजरे में पन्ना' आदि उपन्यासों में यह प्रसंग दिखाई देते हैं।

मराठी उपन्यासों में श्री. ना. पेंडसे के 'गारंबीचा बापू' र. वा. दिघे के 'सराई' और 'पडरे पाण्या' में इस कला का बहुत कम मात्रा में चित्रण हुआ है।

बढ़ई : बढ़ई का समावेश भी भारतीय लोककला में होती है। इसका ज्यादातर संबंध देहातों से होता है। शिवप्रसाद गोस्वामी जी के 'सोनामाटी' में इस कला का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से हुआ है। इसके अतिरिक्त मराठी के प्रख्यात लेखक गो. नी. दांडेकर के 'जैत रे जैत' में बढ़ई कला का सुंदर चित्रण हुआ है।

उपर्युक्त लोककला के अतिरिक्त, कुम्हार कला, झिम्मा-फुगडी, रास गाँदिया भगवान गोरवाल के 'काला पहाड़' में चित्रित गुल्ली डंडा, गुन्चापारा, कौड़ी-गुडगुड आदि का समावेश लोककला के अंतर्गत होता है। इसके अलावा कबड्डी और तुमरी ठप्पा आदि भी लोककला के ही अंग हैं।

लोक संस्कृति : यह संस्कृति का जीवंत रूप है, जो साक्षात् जीवन को सौंदर्य और भाव से संचालित करता है। लोकसंस्कृति का सबसे अधिक समृद्ध रूप भारतीय लोकसंस्कृति में मिलता है।

लोकसंस्कृति में लोक से समग्र क्रियाकलाप प्रतिबिंब होते हैं। लोकसंस्कृति संस्कृति का लोकप्रिय और जीवंत रूप है। इसमें जीवन विषय नही है तो प्रत्यक्ष जीवन मुखर होता है। लोकसंस्कृति हर देश के समाज की अपनी संपत्ति और विभूति होती है। यह किसी एक व्यक्ति की निर्मिति न होकर सामूहिक अविष्कार होती है। इसमे कृत्रिमता न होकर आत्मीयता होती है। विभिन्न संबंधों द्वारा इसका निर्माण होता है। लोकसंस्कृति विशुद्ध कलाओं की जन्मस्थली होती है। लोसंस्कृति के सही दर्शन, लोकगीत, लोकगाथा, लोककला, लोकनाट्य, लोकसंगीत, पर्व-त्यौहार, तथा दैनंदिन जीवन के हर्ष-उल्हास में होते हैं। "लोकसंस्कृति के संदर्भ में डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय कहते है, "लोकसंस्कृति से हमारा अभिप्राय जनसाधारण की उस संस्कृति से है जो अपनी प्रेरणा लोकों से प्राप्त करती थी, जिसकी उत्सभूमि जनता थी और जो बौद्धिक विकास के निम्न धरातल पर उपस्थित थी।" (सं. राहुल सांकृत्यायन, हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास, पृ. 4, षोडष भाग, हिंदी का लोकसाहित्य)

मराठी लोकसाहित्य एवं लोकसंस्कृति के विद्वान रा. चि. ढेरे लोकसंस्कृति का संबंध नागर संस्कृति से जोड़ते हुए लिखते हैं, "लोकसंस्कृति यह प्राकृतिक साहचर्य से प्रामाणिक रिश्ता रखनेवाली नागर संस्कृति के निकट विकसित होने वाली और नाम संस्कृति रचना प्रक्रिया करने वाली उपादान है।" (रा. चि. ढेरे, लोकसंस्कृति उपासक, पृ. 173)

लोकजीवन : इसमें लोक हृदय की भावनाएँ, कल्पनाएँ, नैसर्गिक रूप अवतरित होती है। विविधता के बावजूद भी भारतीय लोकजीवन में अंदरूनी साम्य मिलता है। अतः हिंदी और मराठी आँचलिक उपन्यासों में लोकजीवन का व्यापक रूप में चित्रण मिलता है। रहन-सहन, वेशभूषा, आभूषण, कदकाठी, अभिवादन, खान - पान आदि से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है।

वेषभूषा : भाषा और खान-पान की तरह भारत में वेषभूषा में भी विविधता दिखती है। 'जिंदगीनामा' उपन्यास में पंजाबी लोगों की वेशभूषा के संबंध में लिखते हैं, "कोई नवेली पहन काबुली दरियाई का। किसी ने बांकड़ी के जालवाली गुलाबी ओढवी।" (कृष्णा सोबती, जिंदगीनामा पृ. 51) यहाँ पंजाबी नारियों में प्रिय वेशभूषा का दर्शन होता है। मराठी उपन्यासों में भी वेशभूषा का चित्रण आया है। र. वा. दिघे के 'पाणकळा' उपन्यास का चित्रण प्रस्तुत है, 'सोनी जांभळी पैठणी ने सुन नागकन्ये प्रमाणे पडळीवरून गावाकडे जावयास निघाली होती. पैठणीचा बोंगा तिला भान झाला होता... तिने अंगात हिरव्या साटणीची कटकीची चोळी घातली होती साटणीवर बुट्टे असून तिचे हिरवे काठ गोरय दंडात रुतले होते।" (र. वा. दिघे, पडरे पाण्या, पृ. 75) यहाँ कृषक मराठी नारी का मूर्त चित्र सामने आता है। इसके अलावा 'तुंबडचे खोत', 'आई आहे शेतात', 'बनगरवाडी', 'पडघवली' आदि उपन्यासों में वेशभूषा को लेकर विविधता दिखाई देती है।

वेशभूषा के अतिरिक्त आभूषण, कदकाठी, खानपान आदि बातों में हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में विविधता दिखाई देती हैं। अतः लोकजीवन में भारतीय संस्कृति के कई संदर्भ विद्यमान हैं।

लोकसाहित्य : लोकजीवन का स्पंदन होता है। जिसमें विविध प्रसंगों का हृदय स्पर्श चित्रण किया जाता है। लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोक-सुभाषित आदि लोकसाहित्य के प्रमुख प्रकार है। रेणू के 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'नागार्जुन के बलचनामा', कृष्णा सोबती के 'जिंदगी नामा' आदि उपन्यासों में लोकगीतों का चित्रण हुआ है। आठवी 'भावर' उपन्यास का सांग गीत दृष्ट्व्य है।

ISSN : 2319-5908

बाट निराली को मत छेडे थे तो सतवादी हैं भूप,
सत के कारण राज छोड दिया तू क्या समझा बेफूप....
खोटे बचन फेरे मत कहियो, के तू पी के आय भंग।।
(आनंद प्रकाश जैन आठवी भाँवर पृ. 168-69)

मराठी साहित्य में भी लोकगीतों की मात्रा प्रचुर मात्रा में पायी जाती है। र. वा. दिघे के 'पड रे पाण्या', श्री. ना. पेंडसे द्वारा लिखित 'तुंबाडचे खोत', गो. नी. दांडेकर के 'जैत रे जै' रणजित देसाईजी की 'बारी' आदि प्रतिनिधि उपन्यासों में लोकगीत पाए जाते हैं। र. वा. दिघे लिखित 'पडरे पाण्या' का एक गीत प्रस्तुत है।

''तुझी रानात हिरवी मांडी ग।
तू नेसलीस हिरवी साडी। (र. वा. दिघे, पडरे पाण्या पृ. 223)''

हिंदी तथा मराठी आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति के अंतर्गत लोकजीवन और लोकसाहित्य के साथ साथ, **लोककथा, लोकगाथा, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकनाट्य** आदि को अनन्य साधारण महत्व है। देश के हर प्रदेश में इनमें विविधता पायी जाती है। जो उस प्रदेश की सांस्कृतिक पहाचान होती है। अतः लोकसंस्कृति विशिष्ट भू-प्रदेश की **'ब्लू प्रिंट'** होती है।

संदर्भ-सूची

1. कालीचरण यादव (सं.), मड़ई, अंक 11
2. डॉ. र. न. वरखेडे, लोकसाहित्य व लोक परंपरा, विद्याबलम प्रकाशन धुळे, प्रथम संस्करण 1993, पृ. 45
3. फणीश्वरनाथ रेणू, मैंला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, ग्यारवाँ संस्करण 1980, पृ. 208
4. र. वा. दिघे, पडरे पाण्या, 133 ठोकळ प्रकाशन, पुणे, द्वितीय 1966, पृ. 132
5. र. वा. दिघे, पाणकळा, व्हीनस प्रकाशन पुणे, प्रथम प्रकाशन 1954, पृ. 9.10
6. नागार्जुन बलचनामा, किताब महल प्रकाशन, छठा संस्करण 1978
7. गो. नी. दांडेकर, जैत रे जैत, कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, मुंबई, पाँचवा संस्करण 2002, पृ. 22
8. र. वा. दिघे, पडरे पाण्या, ठोकळ प्रकाशन, पुणे वितय 1966, पृ. 223

●●●